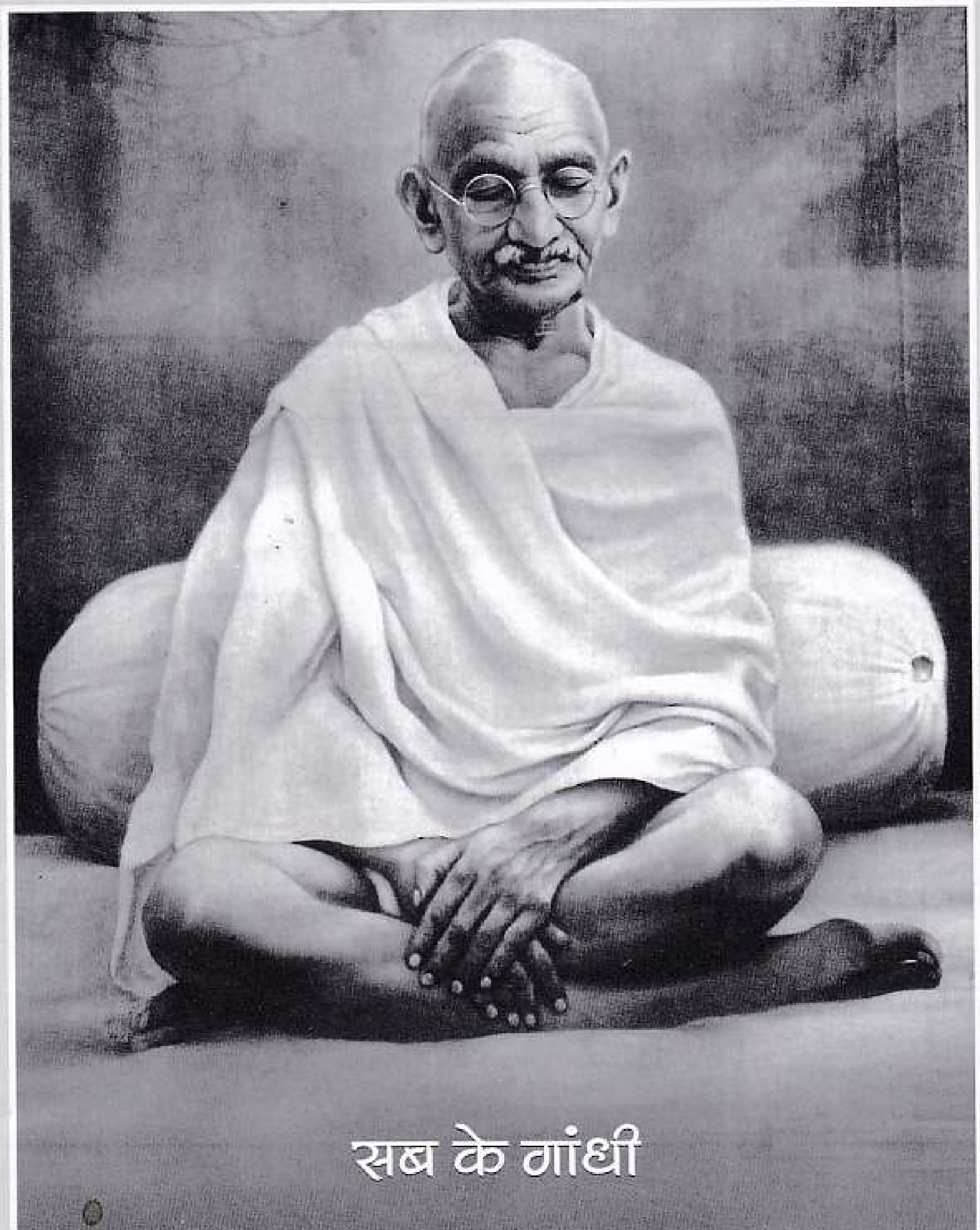
अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : १० आश्विन वि.सं. – २०७७ अक्टूबर, २०२० पृष्ठ – २८ RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X



सब के गांधी

ग्राम–सखी : एक संवाद

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति गत एक बर्ष से ग्राम पंचायत **भंभोरिया** में ग्राम–सखी संवाद कर रही है। **भंभोरिया** व इसके अन्य गांव **देवलिया, बगरु खुर्द, झाई** की महिलाओं के साथ निरंतर सम्पर्क कर संवाद आयोजित किये जा रहे हैं। संवाद का मुख्य उद्देश्य – समस्याओं पर बातचीत, महिलाओं में जागरुकता एवं आपसी विचार विमर्श से समाधान की तलाश करना है। **समुदाय का शिक्षा से जुड़ाव हो। घर–घर में पोथी घर हो। गांव में ग्राम सखी व ग्राम सखा बनें। वे सामाजिक, सांस्कृतिक विकास एवं लोक जागरण के लिए काम करें।**

अभी हाल ही में २८ अगस्त २०२० को झाई की महिलाओं के साथ संवाद का आयोजित किया गया। यह छठा संवाद था। इससे पूर्व पांच संवाद किए जा चुके हैं। इस कार्यक्रम में २० महिलाओं ने भाग लिया। संवाद में महिलाओं के स्वास्थ्य, गांव की समस्या, शिक्षा आदि पर बात की। संवाद की शुरुआत गांव के खुले और शुद्ध वातावरण से की गई। **गांव में प्रेम है। ज्ञान है। शुद्ध हवा है। फिर भी गांव में तकलीफें क्यों हैं ? गरीबी क्यों है ? भेदभाव क्यों है ? गांव में भी शहर का प्रभाव बढ़ रहा है। शहर गांव तक पहुंच गया है। गांव में ज्ञान और प्रेम बचेगा क्या? गांव में जो है, वो कैसे बचा रहे ? ऐसे अनेक सवाल हमारे मन में हैं। गांव में कहां ठहराव आ गया है ? कहां जड़ता है? गांव में ऐसी क्या चीजें हैं जो लोगों को पीछे खींच रही हैं। गांव में कितने अंधविश्वास हैं जो आगे बढ़ने से रोकते हैं? महिलाओं के साथ गांव की समस्या पर बात की और महिलाओं ने भी खुलकर अपनी बात कही।**

महिलाओं ने बताया कि जो समस्या गांव को पीछे खींच रही है वह छूआछूत है। ऊंची जाति के लोग नीची जाति के लोगों को मन्दिर के अन्दर जाने से रोकते हैं। नीची जाति के लोगों के साथ खाना पीना नही करते। कई बंदिशे है। यह भेदभाव समाज से मिटना चाहिए। जो लोग ऐसा करते है, उनका सोच बदलना चाहिए। महिलाओं ने बताया कि गांव में पानी की भी बहुत समस्या है। वे काफी दूर से पानी भर कर लाती हैं जिससे उन्हें काफी तकलीफ का सामना करना पड़ता है।

जो महिलाएं शिक्षित हैं और सिलाई के काम में कुशल हैं, वे सिलाई व क्राफ्ट का काम करना चाहती हैं। समिति ने भंभोरिया गांव की महिलाओं को मास्क बनाने का काम दिया है। यह काम अभी नियमित चल रहा है।

सभी सखियों ने कहा कि संवाद की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए जिससे समाज में सद्भाव और प्रेम बना रहे। समिति का प्रयास यह भी है कि अधिक से अधिक ग्राम सखी व ग्राम सखा बने, जो कि गांव में लोक जागृति के लिए काम करें। इस संवाद में समिति अध्यक्ष रमेश थानवी, बटीना मलिक, प्रेम गुप्ता एवं श्री मनीष शर्मा ने भाग लिया।

संवाद का संचालन श्रीमती कोमल गहलोत ने किया। ❑

–बटीना मलिक





सूर्योदय का गीत

आगे बढ़ो ! संसार के क्षितिज पर सूरज उगाने में लग जाओ!
देखो न ! उसका पहिया दलदल में धंस गया है!
देखो न ! उसकी धुरी खून के दलदल में धंस गयी है!

आगे बढ़ो जवानो, सूरज अकेले नहीं उग सकता
घुटने टेको, सीना अड़ाओ उसे कीचड़ से उबारने के लिए
खून के दलदल से उबारने के लिए
आगे बढ़ो भाइयो, उसकी अग्नि-रेखाएं हमें घेरे हैं
आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, उसकी लपटें हमारे चारों ओर घेरा डाले हैं!

ओ सृजन-कर्त्ताओं बढ़ो ! ... अपनी दायित्व-वृत्तियों को
सचेत करो, माथा तानो-पांव जमाओ - सूरज डूबने न पाये...
और मुझे सहारा दो दोस्तो... कि मैं भी उसके साथ न डूब जाऊं

वह मेरे ऊपर है, मेरे अंतर में है, मेरे चारों ओर है
उसके साथ मैं एक पवित्र ज्योति-वितान की तरह
बुन दिया गया हूं !

आगे बढ़ो साथियो - सूर्य अकेला कैसे उगेगा ?
घुटने टेक कर, सीना अड़ाकर जोर लगाओ
कीचड़ से, खून के दलदल से उबारो
माथा तानकर, बांहें चढ़ाकर-
ताकि सूर्य आत्मा की तरह जगमगा सके। ❑

- एंजलिनो सिकिलियानोस (यूनानी कवि)

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।
-ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की गैर-व्यावसायिक पत्रिका
वर्ष : ४६ अंक : १० • अश्विन वि.सं.२०७७ • अक्टूबर, २०२०

क्र म

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक : रमेश थानवी | कार्यकारी संपादक : प्रेम गुप्ता | प्रबंध संपादक : दिलीप शर्मा

सद्भावना सहयोग : व्यक्तिगत ३००/- रुपये संस्थागत ५००/- रुपये एक वर्ष के लिए | मैत्री समुदाय की सदस्यता ३०००/- रुपये

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
फोन : २७००५५६, २७०६७०६, २७०७६७७
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

बापू के सपनों का भारत और आज का सच!!

देखो ना; आज बापू को कितनी पीड़ा हो रही हैं? वे दर्द से कराह रहे हैं। बापू विलाप कर रहे हैं। बापू का ऐसा करना लाजमी ही तो है। क्या बापू ने ऐसे ही स्वाधीन भारत का सपना देखा था? राष्ट्रपिता और महात्मा कहलाने वाले गांधी देश के ऐसे हालात को देखकर खुश रहने की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं भला? यह मान तो आखिर उनके देशवासियों ने ही दिया था ना। बापू को महात्मा का विशेषण गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने दिया था और राष्ट्रपिता का दर्जा नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने ही दिया था। बापू ने तो हर तरह के शोषण, उत्पीड़न और भेदभाव से देश को मुक्त करने की कामना की थी। देश के हरेक व्यक्ति को जीने का समान अधिकार और अवसर मिले ऐसा सपना देखते थे, बुनते थे बापू ।

पूरी मानवता के प्रति आपके मन में अपार प्रेम था, करुणा थी, स्नेह था। यही कारण था कि बापू सर्व धर्म समभावी भारत का सपना देखते थे । रंगभेद, भेदभाव, आर्थिक विषमता को देखकर उनका दिल दहल उठता था।



सचमुच! बापू आज आप जिंदा होते तो शर्मसार ही होते। आज के भारत की ऐसी तस्वीर को देखकर आप सचमुच रो पड़ते और फिर ना जाने कितने सैकड़ों उपवास करते और खुद को सजा देते। बिना किसी को नुकसान पहुंचाये। जहां मानवता ही बाजार के सामने बिक चुकी हो, अपना सर्वस्व लुटा चुकी हो ऐसे में आप क्या कहते बापू!!!

भारतीय समाज में आज कितनी हिंसा हो रही है लोग कितने दुखी हैं । दर्द से कराह रहे हैं। जिस तरह आज बलात्कार के केस बढ़ते जा रहे हैं। सरे आम आज निर्मम हत्याएं हो रही हैं। एक के बाद एक निर्भया जैसी बेकसूर बेटियां बलात्कार का शिकार हो रही हैं, इतना सब देख, बापू, आप तो धिक्कार ही रहे होते खुद को। बापू आप तो नारी को पुरुष के समान बराबरी का दर्जा दिलाना चाहते थे। आप तो स्त्रियों का आत्म- सम्मान, आत्म-बल बढ़ाने के पक्ष में थे ना । आप तो कहते थे ना कि स्त्रियां किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। और ऐसा आपने कर भी दिखाया था।

बापू आप तो चाहते थे कि गांव से लेकर पूरा देश आत्मनिर्भर बने। आपने तो खुद चरखा चलाकर और सारे काम अपने हाथों से कर के देश के सामने ऐसा ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है जहां कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था।

गांधी के मायने ही तो गांधी के उसूल थे। गांधी के उसूलों ने ही गांधी को खुद से इतना ऊंचा उठाया कि आज गांधी के सिद्धांतों की, उनके सत्य, अहिंसा प्रेम और करुणा की पूरी दुनिया को आज उसकी जरूरत है। गांधी ने जीवन के हर मोड़ पर, चाहे वह असहयोग आंदोलन हो, भारत छोड़ो आंदोलन हो या फिर दांडी यात्रा हो।

बापू यदि किसी कसौटी पर अपने आप को थोड़ा भी कमजोर पाते थे या यूं कहें उन्हें अपने आत्मबल में आत्मविश्वास की कहीं कोई कमी नजर आती तो वे फिर से उस कमी को पूरा करने की कोशिश में जुट जाते थे और जब तक उसका प्रायश्चित तन और मन से ना कर लेते तब तक उन्हें आत्म संतुष्टि नहीं होती थी। ऐसा भी स्वयं को ही कष्ट देकर करते थे। किसी दूसरे को इसके लिए बाध्य नहीं करते थे। वे स्वयं को ही सजा देते थे।

बापू का मानना था कि हमें जो आजादी मिलने जा रही है वह राम राज्य जैसी नहीं है । बापू ने कहा था, आज भी हम उससे उतनी ही दूर हैं जितने कि पहले थे । करोड़ों लोगों का जीवन ही मेरी राजनीति है और यह मुझसे कदापि अलग नहीं हो सकती। करोड़ों लोगों के जीवन से मैं अलग नहीं रह सकता अगर ऐसा हुआ तो मैं अपने आप को ईश्वर से अलग ही मानूंगा।

बापू की नजर में पीड़ितों का कष्ट उनका अपना कष्ट था। बापू ने अपनी पुस्तक सत्य के प्रयोग में लिखा है, कि ''स्वावलंबन और सादगी के मेरे शौक ने आगे चलकर तीव्र स्वरूप धारण कर लिया था। इन चीजों की जड़ें मेरे अंदर शुरू से ही थी उसके फलने फूलने के लिए केवल सिंचाई की आवश्यकता थी । वह सिंचाई अनायास ही मिल भी गई।'' बापू कपड़ों की धुलाई से लेकर, बालों की कटाई साफ-सफाई, खाना पकाना और पखाना साफ करना आदि सभी काम खुद करते थे।



बापू के जीवन में श्रम का बहुत महत्व था। वे श्रम को ईश्वर से जोड़ने की कला मानते थे उनके लिए शारीरिक श्रम ईश्वर के साथ एक हो जाने का साधन था, साध्य था और यह उनका अध्यात्म ही था।

देश की माटी के साथ, लोगों के साथ और कुदरत के साथ। बापू का हर रिश्ता रूहानी था। ❑ -प्रेम गुप्ता

मैं सांस्कृतिक अलगाव नहीं चाहता



महात्मा गांधी

❑

आज पूरी दुनिया में जिस तरह का सांस्कृतिक अलगाव बढ़ता जा रहा है उसने विश्व को आज जिस स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है वह हमारे सामने चिंता का सबसे बड़ा सवाल है? महात्मा गांधी का मानना था कि भारतीय संस्कृति कई संस्कृतियों का संगम है। लेकिन आज हम में से अनेक लोग उन संस्कृतियों में टकराव पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं।

बापू ने कहा था– मैं संपूर्ण विश्व को एक मानव शरीर की तरह है मानता हूं। हमें अपने हृदय में सारी सृष्टि के कल्याण की कामना करनी चाहिए और यह प्रार्थना भी करनी चाहिए कि ईश्वर हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें। ❑ सं.

मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से हो और उसकी सभी खिड़कियां बंद हों। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियों की सुवासित वायु मेरे घर के चारों ओर बहे। लेकिन मैं ऐसी किसी वायु से अपने पांव नहीं उखड़ने दूंगा। मुझे औरों के घर में दस्तंदाज, भिखारी या गुलाम बनकर रहने से इंकार है।

यह बात मेरे मन में दूर-दूर तक भी नहीं है कि हम एकांतिक बन जाएं या अपने चारों ओर अवरोध खड़े कर लें। मैं सादर किंतु बलपूर्वक यह कहना चाहता हूं कि औरों की संस्कृति की सराहना का प्रश्न अपनी संस्कृति की सराहना और उसके आत्मसात्करण के बाद उठना उचित है, उससे पहले कदापि नहीं।

मेरा दृढ़ मत है कि जो बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृति के पास हैं, वे किसी अन्य संस्कृति के पास नहीं हैं। पर हमें उनका ज्ञान ही नहीं है, हमें अपनी संस्कृति के अध्ययन का विरोध करने और उसका अवमूल्यन करने की पट्टी पढ़ायी गयी है। परिणाम यह है कि हमने अपनी संस्कृति को जीना लगभग छोड़ ही दिया है। आचरण के बिना कोरा शास्त्रीय ज्ञान एक संलेपित शव के समान होता है जो देखने में भले ही सुंदर लगे, पर वह प्रेरणा देने या उदात्तीकरण करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता।

मेरा धर्म मुझे अन्य संस्कृतियों का अनादर अथवा उनकी उपेक्षा करने से बरजता है लेकिन साथ ही, वह मुझसे अपनी संस्कृति को आत्मसात करने और उसे जीने का आग्रह भी करता है, क्योंकि ऐसा न करना हमारे लिए निश्चित रूप से आत्मघाती होगा।

भारतीय संस्कृति उन विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण है जो इस देश में रच-बस गयी हैं और जिन्होंने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है तथा स्वयं इस धरती की आत्मा से प्रभावित हुई हैं। स्वभावतया इस संश्लेषण का स्वरूप स्वदेशी है जिसमें हर संस्कृति के लिए उचित स्थान सुनिश्चित है।

भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करने वाली और अपने-अपने भौगोलिक तथा अन्य पर्यावरणों से प्रभावित संस्कृतियों का संगम है। तदनुसार इस्लामी संस्कृति

अरब, तुर्की, मिस्र और भारत में एक जैसी नहीं है, लेकिन वह स्वयं इन देशों की परिस्थितियों से प्रभावित हुई है। अत: भारतीय संस्कृति भारतीय है। यह न पूरी तरह हिन्दू है, न इस्लामी और न कोई अन्य, यह इन सबका मिला-जुला रूप है और मूलत: पूर्वी है। जो व्यक्ति स्वयं को भारतीय कहता है उसका यह कर्तव्य है कि इस संस्कृति की कद्र करे, इसका न्यासी बने और यदि इस पर कोई आंच आये तो उसका प्रतिकार करे।

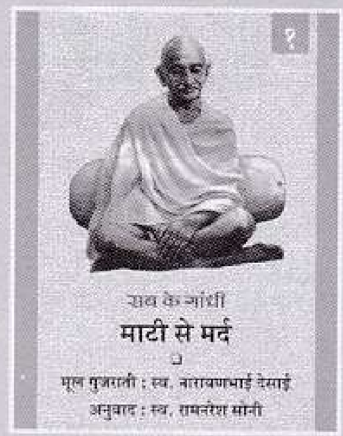
हमारे युग की भारतीय संस्कृति अभी निर्माणाधीन है। हममें से अनेक लोग उन संस्कृतियों का, जिनके बीच आज टकराव की स्थिति दिखाई दे रही है, एक मिश्रण तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं। जो संस्कृति एकांतिक रहने का प्रयास करेगी, वह जीवित नहीं रह सकेगी।

आज भारत में विशुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज विद्यमान नहीं है। आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे या वे वहां जबर्दस्ती घुस आये, यह जानने में मेरी कोई विशेष रुचि नहीं है। मेरी रुचि तो इस तथ्य में है कि मेरे बहुत पहले के पूर्वज पूरी स्वतंत्रता के साथ एक-दूसरे से घुल-मिल गये थे और हमारी वर्तमान पीढ़ी उसी मेल-मिलाप का परिणाम है।

यह भविष्य ही बताएगा कि क्या हम अपनी जन्मभूमि का और उस छोटी-सी पृथ्वी का, जिसकी बदौलत हम जीवित हैं, कोई भला कर रहे हैं, अथवा उसके ऊपर भार हैं?

या तो हम विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा मित्रता के बंधन से बंधकर साथ रहते हुए संस्कृति का जो सुंदर सम्मिलन तैयार किया गया है, उसे बनाये रखने और सुदृढ़ करने का प्रयास करेंगे या उस दिन की खोज में लग जाएंगे जब हिंदुस्तान में केवल एक धर्म था और अपने कदम उसी एकांतिक संस्कृति की ओर वापिस मोड़ ले जाएंगे।





गांधी जी मन* भर उपदेश देने के बजाए एक छटांक आचरण को अधिक महत्व का मानते थे और यही आचरण उनका माटी से मर्द बनाने की सबसे बड़ा साधन था।

❑ ❑ ❑

सं.

* चालीस सेर का एक मन होता था। लोक-भाषा में यह मण बोला जाता था।

यह भी संभव है कि हम ऐसी किसी ऐतिहासिक तिथि की खोज में सफल ही न हो पाएं और अगर हो भी जाएं और अपने कदम वापिस मोड़ लें तो अपनी संस्कृति को किसी कुरूप युग की ओर ढकेल दें। यदि ऐसा हुआ तो दुनिया हमें कोसेगी, जो उचित ही होगा।

जहां तक मेरा प्रश्न है, यद्यपि मैंने अपने ऊपर पाश्चात्य संस्कृति के ऋण को खुलकर स्वीकार किया है, पर मैं यह कह सकता हूं कि इस राष्ट्र की जो भी सेवा मुझसे बन पड़ी है वह केवल इसीलिए कि मैंने प्राच्य संस्कृति का दामन पकड़े रहने की भरसक कोशिश की है। मैं अगर अंग्रेजियत को अपनाकर एक विराष्ट्रीय व्यक्ति बन गया होता और भारत की आम जनता के बारे में कुछ न जानता और उनकी चिंता ही न करता तथा उनके तौर-तरीकों, आदतों, विचारों और आकांक्षाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता तो मैं उनके लिए बिल्कुल बेकार साबित हुआ होता।

यूरोपीय सभ्यता निस्संदेह यूरोपवासियों के अनुकूल है, लेकिन हम यदि उसके अनुकरण का प्रयास करेंगे तो भारत बर्बाद हो जाएगा। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें जो कुछ अच्छा और अंगीकार करने योग्य है, हम उसे भी न अपनायें।

भौतिक सुखों के पीछे लगातार दौड़ना और उसमें अंधाधुंध वृद्धि करना ऐसी ही एक बुराई है, और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि यूरोपवासी जिन सुखों के गुलाम हुए जा रहे हैं, अगर उनके भार तले दबकर नष्ट हो जाना नहीं चाहते तो उन्हें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। हो सकता है कि मेरी बात गलत हो, लेकिन यह मैं जानता हूं कि अगर भारत ने इस स्वर्णमृग के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया तो वह निश्चित रूप से मौत के मुंह में चला जाएगा।

यद्यपि हमें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी है, पर हम पश्चिम के सूक्ष्म प्रभुत्व से स्वतंत्र नहीं हो पाये हैं। मुझे राजनीतिज्ञों के उस सम्प्रदाय से कुछ नहीं कहना जो यह मानता है कि ज्ञान केवल पश्चिम से मिल सकता है। न मैं इस विश्वास को सही मानता हूं कि पश्चिम से हमें कोई अच्छी चीज नहीं मिली है। लेकिन मुझे भय है कि हम अभी तक इस मामले में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके हैं।

मुझे आशा है कि यह दावा कोई नहीं करेगा कि चूंकि हमें विदेशी आधिपत्य से राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गयी है, अत: मात्र यही तथ्य हमें विदेशी भाषा और विदेशी विचारों के सूक्ष्मतर प्रभाव से भी स्वतंत्रता दिलाने के लिए पर्याप्त है।

ईश्वर ने विश्व की व्यवस्था इस तरह की है कि कोई व्यक्ति अपनी भलाई या बुराई को अपने तक सीमित नहीं रख सकता। सम्पूर्ण विश्व एक मानव शरीर की भांति है जिसके विभिन्न अंग हैं। एक अंग में पीड़ा होने पर उसकी अनुभूति पूरे शरीर को होती है। एक अंग में सड़न पैदा होने पर अनिवार्यत: सम्पूर्ण शरीर में विष फैल जाता है।

मनुष्य को हृदय से ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण की कामना करनी चाहिए और यह प्रार्थना करनी चाहिए कि ईश्वर हमें उसे कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति दे। सबके कल्याण की कामना में ही व्यक्ति का अपना कल्याण भी निहित है, जो व्यक्ति केवल अपने या अपने समुदाय के कल्याण की ही कामना करता है, वह स्वार्थी है और उसका भला कभी नहीं हो सकता। ❑

गांधी जी द्वारा सूचित ग्यारह व्रत

१. सत्य,
२. अहिंसा,
३. ब्रह्मचर्य,
४. अस्वाद,
५. अस्तेय,
६. अपरिग्रह,
७. अभय,
८. अस्पृश्यता-निवारण
९. परिश्रम,
१०. सर्वधर्म समभाव और
११. स्वदेशी।

❑ ❑ ❑

सं.

भारत आजाद हुआ



वर्षा दास

❑

अगस्त के महीने में 'एशियन लिटररी सोसाइटी' ने 'जश्न –ए – आज़ादी ' शीर्षक से एक वेबिनार का आयोजन किया था। उसके प्रथम सत्र का विषय था 'आज़ादी, अधिकार एवं उत्तरदायित्व के संदर्भ में गांधीजी के विचार '। इस विषय पर पर श्रीमती वर्षादास ने कुछ बातें कहीं थीं। जो यहां प्रस्तुत है।
❑ सं.

भारत आज़ाद हुआ उसके लगभग पांच वर्ष पहले सत्याग्रहियों के परिवार में मेरा जन्म हुआ था। गाँधी-विचार , गाँधी-दर्शन के संस्कारों से मेरी परवरिश हुई। शायद इसीलिए यदि कोई गांधीजी की निंदा करे तो मैं सह नहीं पाती हूँ। मैं गाँधी भक्त हूँ। गांधीजी जब जीवित थे तब भी ऐसे लोग थे जो उनकी निंदा करते थे, और उन्हें जान से मार डालने के प्रयास भी हुए थे। मुझे लगता है कि ऐसे लोगो ने न तो गांधीजी को पढ़ा है, न ही उनको समझा है। गांधीजी की बातों में और लेखन में कहीं अतिशयोक्ति नहीं है, कहीं अनावश्यक शब्द तक नहीं है। हालांकि उन्होंने एक से अधिक बार यह अवश्य कहा है कि उनकी पहले कही गई बात बाद में कही हुई बात में अंतर हो, भिन्नता हो तो पाठक बाद की बात को स्वीकारें और और पिछली बात को खारिज कर दें। उनका मनन और जीवन निरंतर विकासशील था। उनकी यात्रा सत्य से सत्य की ओर की थी।

आज़ादी,अधिकार और उत्तरदायित्व परस्पर जुड़े हुए हैं। गांधीजी का मानना था कि जो स्वतंत्रता प्रजा को अधिकार और दायित्त्व से वंचित रखे वह वास्तव में स्वतंत्रता है ही नहीं। १ अक्तूबर १९३१ की यंग इंडिया पत्रिका में गांधीजी ने लिखा था कि यदि मुझे मेरे देश की आज़ादी चाहिए तो सभी जातियां कमज़ोर या ताकतवर सभी की समान आज़ादी की, समान अधिकार की मैं स्वयं कामना न करूं तो मैं उस आज़ादी के योग्य नहीं हूँ। और १९२६ में कहा था कि 'स्वतंत्रता के सर्वोच्च स्वरूप में अनुशासन और विनम्रता सर्वाधिक होने चाहिए।'

यदि व्यक्ति, समाज या देश भी अनुशासनहीन और घमंडी हो तो उनकी आज़ादी में लोग अन्याय , शोषण , विभाजन और असमानता के शिकार हो जाएगें। आज़ादी के साथ दायित्व सदा से जुड़ा हुआ है। यदि हम अपना फ़र्ज़ निभाते हैं तो अधिकार दूर नहीं होता। यदि हम फ़र्ज़ न निभाएं और अधिकार के पीछे दौड़ते रहे तो वह और दूर चला जाता है। प्रत्येक कर्तव्य अधिकार प्रदान करता है, और प्रत्येक अधिकार के साथ उससे संबंधित दायित्व जुड़ा है। इस प्रकार कर्तव्य और अधिकार का अनंत चक्र चलता ही रहता है। इसे कार्यान्वित करना , अपने व्यवहार में लाना थोड़ा मुश्किल लग सकता है लेकिन गांधीजी मानते थे कि इसे निभाने से हम स्वयं और अन्य भी गरिमायुक्त जीवन जी सकते हैं।

गांधीजी की पुस्तक **मेरे सपनों का भारत** के प्राक्कथन में ८ अगस्त, १९४७ के दिन हमारे प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है – वे कहते हैं : **स्वतंत्रता अंत में तो किसी अधिक महान और अधिक उदात्त साध्य का साधन ही है। और महात्मा गांधी के सपनों के भारत की सिद्धि उन उद्देश्यों और आदर्शों की भव्य परिणति होगी, जिनके लिए वे जिए और जिनके वे प्रतीक बन गए हैं।**

❑ बी-२/२१७६ वसंत कुंज, नयी दिल्ली

भारत का पहला आधुनिकतावादी



मुल्कराज आनंद

❑

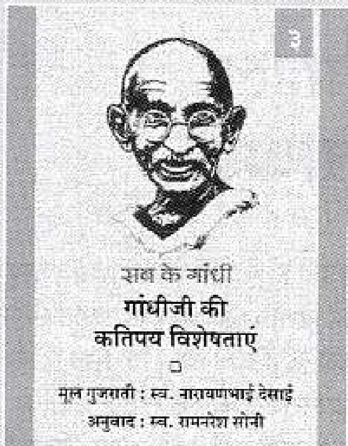
रवीन्द्र नाथ ठाकुर स्वतंत्र भारत के विघटन के खतरे से बहुत विचलित हुए थे। उनके मन में आशा जागी थी कि यदि युवजन अतीत की बुरी सामाजिक और मानसिक आदतें छोड़ दें तो हमारी विरासत बच सकती है। ठाकुर यह मानते थे कि हमें पुराने मतों से वही लेना चाहिए जो कि नए दौर के लिए संगत है।

वे ऐसी अंतर्दृष्टि खोजते रहे जो उन्हें सत्य और सौंदर्य के दर्शन करा सके। सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कलाविद् एवं शिक्षाविद् मुल्क राज आनंद का प्रस्तुत व्याख्यान पाठकों को एक नई दिशा देगा। अक्टूबर के महीने में शांति–निकेतन में शारदोत्सव का आयोजन होता है। इस अवसर पर गुरुदेव का ऐसा स्मरण हमारे लिए अत्यंत सुखदायी है। ❑ सं.

हम कुछ लोग, जिन्हें रवींद्रनाथ टैगोर से उनके जीवन के बाद के उत्तरार्ध में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, महसूस करते थे कि उनके जीवन, विश्वासों और अभिव्यक्ति के लिए इस्तेमाल किये गये शब्दों के बीच एक गहरा संबंध रहा होगा ।

१९३८ में कलकत्ता में आयोजित होने वाली ऑल इंडिया प्रोग्रेसिव कान्फ्रेंस के लिए उनका अभिभाषण लेने के लिए जब मैं शांति निकेतन गया तो मैंने उन्हें बहुत खिन्न पाया। और अध्यक्षीय भाषण के मेरे निवेदन के प्रत्युत्तर में उन्होंने रचनात्मक साहित्य पर लिखे गये भाषण की जगह मुझे मुस्तफा कमाल पर लिखा एक निबंध थमाया।

मैंने पाया कि धार्मिक प्रतिक्रिया के कारण एक संगठित भारत के विघटन के खतरे से वह गहरे विचलित थे। उनका सिर हताशा से झुका था। कुछ देर बाद उन्होंने निगाहें उठायीं और बोले:– '**हिन्दू–मुस्लिमों के ये झगड़े मुझे पीड़ा पहुंचाते हैं। अतातुर्क ने धर्मनिरपेक्ष तुर्की राज्य का जो विकल्प अपनाया है, वह आशाप्रद है।**' कुछ रुककर वे बोले– '**युवजन को अतीत की बुरी सामाजिक और मानसिक आदतें छोड़नी होंगी। हमें आंख मूंदकर दस्तूर नहीं निभाने चाहिए। हमारे बहुत से नेता बिना कोई प्रश्न किये विरासत में मिले विश्वासों से चिपके रहते हैं क्योंकि उनके बचपन में उनके माता–पिता ने उन्हें ऐसा करने को कहा था।** वे कहते हैं कि वे हिंदू या मुस्लिम या सिख या ईसाई हैं। क्योंकि उनका जन्म इन धर्मों के अनुयायियों के यहां हुआ और खुद उन्होंने बाद में कभी नहीं पूछा कि इन आस्थाओं का मतलब क्या है। वे अपने उद्‌भव के बारे में शायद ही कभी सवाल उठाते हों। उदाहरण के लिए बहुत से मुस्लिम, सिख और ईसाई हिन्दू समाज की निम्नतर जातियों से धर्मांतरित हैं या हिन्दू समाज की निम्नतर जातियों के लोगों के वंशज हैं। वह शायद ही कभी यह समझ पाते हों कि उनके पुरखों ने इन धर्मों को भय के कारण अपनाया। हमें उन तथ्यों पर विचार करना होगा जिनसे यह विचार उभरे। चिरस्थायी दर्शन जैसा कुछ नहीं है। हमें पुराने मतों से बस वही लेना चाहिए जो नये दौर में हमारे लिए संगत है। कुछ छिछले हिन्दू अतीत की मनीषा से गर्वित रहते हैं तो बस इसीलिए क्योंकि मैक्समूलर ने कहा था कि हम कभी महान थे।'



सत्य के बारे में उनकी अटूट श्रद्धा थी। इस सत्य को पाने के लिए वे अहिंसक पुरुषार्थ करते। सत्य–अहिंसा गांधीजी के जीवन मंत्र थे, और श्रद्धा तथा पुरुषार्थ दोनों के सुमेल पर उनका जीवन खड़ा था।

❑ ❑ ❑

सं.

मैंने कहा, 'पुरानी आदतों के खींचे चले जाने के लिए हिन्दुस्तानी में एक मुहावरा इस्तेमाल होता है– लकीर के फकीर।' वे मुस्कुराए और फिर कुछ तीखी आवाज में बोले– **'धर्म जिन्हें हमारी आत्माओं को मुक्त करना था, कैदखाने बनकर रह गये हैं। मठ और मस्जिदें जो कभी प्रेम की उद्घोषणा करते थे, संघर्ष और घृणा के केन्द्र बन चुके हैं। ऊंची जातियां अपने से नीचे वालों से कहती हैं, हमें मत छुओ। पिछले वर्ष मैंने कलकत्ता में पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स में चेताया था कि जिन सत्यों को मनुष्य को जानवरों के स्तर से ऊपर उठाना था वे आज रूढ़ियां बन चुके हैं और तर्क को अंधा, नैतिक संवेदन को मुर्दा बना रहे हैं।'**

रवींद्रनाथ टैगोर के बारे में बात करते हुए मैं उनके मानवतावाद के उद्भव और विकास पर केंद्रित रहना चाहता हूं, उनके विश्वासों को उस धुंधले और वायव आदर्शवाद के आवरण से मुक्त करके देखना चाहता हूं जिसे उनके कुछ उद्गारों ने प्रोत्साहन दिया और जिसे उन लोगों ने उनके आसपास बुना जो हर भारतीय से पूर्व का एक अपार्थिव ज्ञानी होने की अपेक्षा रखते हैं। बीच-बीच में मुखर किस्म के पुनरुत्थानवादी उनके जीवन देवता को एक मानवतारोपित देवता की तरह अर्थान्वित करते उनकी छत्रछाया में शरण लेते हैं।

बहुत प्रशंसक उन्हें एक पैगम्बर के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं और काफी लोग उनकी खूबसूरत दाढ़ी और ऊंचे, भव्य व्यक्तित्व के कारण उन्हें होमर के तौर पर देखते हैं। उनके शोर्य से ही उन्हें जानने वाले कुछ ही लोगों ने यह बात दर्ज की है कि उनकी पुस्तक 'द रिलिजन ऑफ मैन' का रूप और आकार, पूर्वी बंगाल में पद्मा नदी के तट पर स्थित उनकी पुश्तैनी जमींदारी के किसानों से उनके शुरूआती सम्पर्क से नियत हुआ।

उनके हिब्बर्ट भाषणों में बार-बार आने वाले बंगाल के बॉउलों के उल्लेख से समझ में आता है कि अपने मुक्त विचारों और अपरम्परागत धार्मिक विश्वासों के लिए टैगोर इन घुमंतू गायकों के ऋणी थे जो किन्हीं भी औपचारिकताओं का पालन नहीं करते थे और गांव-गांव घूमने वाले अछूत थे, जो नाचते, गाते और जीवन की निरंतर बदलती रंगभूमि से आनंदित होते थे।

संभवत: रवींद्रनाथ ने अपने अवचेतन में खुद को बॉउल मत से जोड़ लिया था। प्रो. क्षितिमोहन सेन के



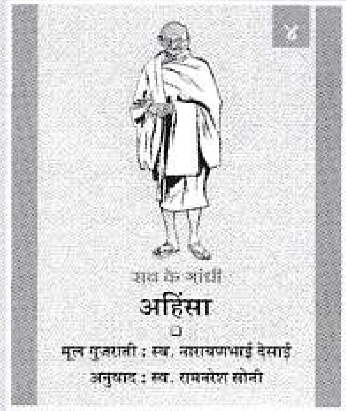
लिखे उत्तर भारत के बॉउलों के विवरण में उनके द्वारा उल्लिखित बॉउल छंदों से तो ऐसा ही लगता है–

'और इसलिए भाई मैं पगला बॉउल बन गया हूं। मैं किसी स्वामी का दास नहीं हूं, किसी धर्मविधान, किसी निषेधादेश, किसी प्रचलन को नहीं मानता। और अब मुझ पर मनुष्यों के रचे भेदभाव की पकड़ भी नहीं रही, मैं बस अपने छलकते प्रेम के आनंद में सुख पाता हूं। प्रेम में कोई विरह नहीं है। सदा ही मिलन है। इसलिए मैं सभी के साथ गाने और नाचने में सुख पाता हूं।'

'ग्लिम्पसेज ऑफ बेंगाल' नाम के उनके पत्रों के संग्रह से पता चलता है कि उस दौरान कवि अपने पिता की जमींदारी के गरीब किसानों और मछुवारों की मानवीय दशा को जान रहे थे जो घोर दरिद्रता में जीते हुए भी यह आशा पाले रखते थे कि ईश्वर उनकी समस्याओं को सुलझाएगा क्योंकि उसी ने उनकी नियति रची है। और अपने पूरे जीवन वह नैसर्गिक मनुष्य की नियति को लेकर अपने सरोकार की वजह से व्यथित रहे।

वह हमेशा ही सत्यान्वेषी रहे। और उनमें गरीब लोगों, सरकार-धनी जमींदारों, और पुरोहितों के दमन के निर्दोष शिकारों के लिए सहज सहानुभूति थी। इसलिए यास्नाया पोल्नाया रियासत के जमींदार लियो टॉल्सटॉय की ही तरह रवींद्रनाथ ने भी अपने जागीरदारी की व्यवस्था को उदार बनाया और किसानों के कल्याण में गहरी रुचि ली।

इसलिए **'कन्वर्सेशंस विद आइस्संटीन'** में जब वे कहते हैं कि ब्रह्मांड का सत्य मानवीय सत्य है तो दरअसल उनका मंतव्य यह होता है कि उनकी रुचि ठोस मनुष्यों में हैं, अमूर्त मानव में नहीं। उदाहरण के लिए उनकी लघु कथाओं में देखिए तो गांव के **पोस्ट मास्टर** से लगाव जोड़ लेने वाली कामगार बच्ची जो बाबू के जाने पर दयनीय रूप से अकेली छूट गयी महसूस करती है, या **'कास्टअवे'** में चोरी का आरोप लगाए जाने पर किशोर नौकर या **'काबुलीवाला'** का मेवाफरोश कलकत्ते के बाबू की नन्हीं बेटी से गहरा जुड़ गया पठान। दरअसल अपनी अधिकांश कहानियों में वह प्रकृति की संतानों के तौर पर स्त्रियों और पुरुषों के काव्यात्मक आत्मबोध के माध्यम से अटपटे मानवी संबंधों के लिए सहानुभूति अंकित करते हैं। और अपने बीच के दौर में वह ब्रह्मसमाज के शुचितावाद को पीछे छोड़ते, नैसर्गिक उद्वेगों की ओर बढ़ते दिखते हैं। वह सभी परस्पर परम्परानिष्ठ रूढ़िवादी मतों के बंधन तोड़ देते हैं और हर बाधक परम्परा से खुद को मुक्त कर लेना चाहते हैं। अपनी मान ली गयी परिष्कृति के बावजूद वह प्रकृति और सौंदर्य के हर मूड के सामने झुकते हैं। अपने व्यक्तित्व के निरंतर उद्वेलन के माध्यम से, अपनी ही डरावनी दुश्चिंताओं का सामना करते, उनका लेखन बर्बरता , क्रूरता और उच्च वर्गों द्वारा तिरस्कार के बीच कोमलता की तलाश बन गया।



शक्तिशाली अहिंसा का प्रयोग तभी हो सकता है जब उस हिंसा के पीछे डर या कायरता न हो।

❑

जिसे बदलना है उसका मूल परम्परा या व्यवस्था में है। जो व्यक्ति अन्याय या जुल्म करता है, वह तो सिर्फ उस व्यवस्था का एक पुर्जा है।

❑

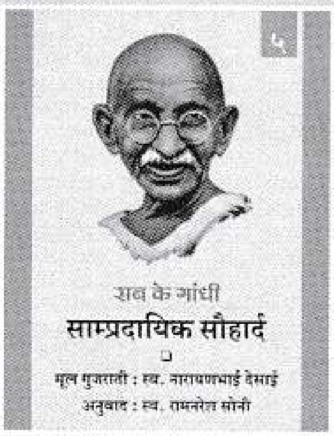
प्रतिकार रोग का करना है, रोगी का नहीं।

❑

अत: अन्याय करने वाले से बैर निकालने या बदला लेने का कोई मतलब नहीं।

❑

अहिंसा का उपयोग यदि व्यवस्था को बदलने के लिए करना हो तो लम्बी अवधि तक कष्ट झेलने की तैयारी होनी चाहिए। ❑ सं.



यहां के मानव–महासागर में अनेक धर्मों और संस्कृतियों की नदियां आकर मिल गई हैं। तभी तो यहां अनेक प्रकार की विविधताओं के बीच एकता विकसित हुई है।

❑ ❑ ❑

सं.

उनके लेखन की बहुविधता में खुद को रोज पुनर्नवा करने की बाध्यता दिखाई देती है। वह अपने आसपास की चीजों पर चिंतन करते हैं, अमर्ष, घृणा और हिंसा पर जो अमंगलकारी विचारों के भंवर का हिस्सा है, वह अंतर्दृष्टि खोजते हैं जो उन्हें अशांति के धुएं के परे ले जा सके। आइंस्टीन ने उनसे पूछा–'तो सत्य या सौंदर्य, मनुष्य निरपेक्ष नहीं है? उन्होंने उत्तर दिया–'सत्य की प्राप्ति मनुष्य के माध्यम से होती है...। हम लोग अपनी गलतियों और भूलों के माध्यम से उसकी ओर बढ़ते हैं, अपने संक्षिप्त अनुभव के माध्यम से, अपनी प्रभासित चेतना के माध्यम से, बायरन की तरह वह भी गा सकते थे –

मैं विचारमग्न रहा
बहुत समय तक, गूढ़ विचारों में,
आखिर अपने भंवर में खदबदाता और
अतिक्लांत मेरा मस्तिष्क हो गया
कल्पना और लपटों का उद्वेलित समुद्र

इस मायने में उनके लिए देह में आत्मा रहती थी और आत्मा शरीर में पलती–बढ़ती थी जीवन देवता (संभवत: प्रेरणा के स्फुरण से उत्सूत जीवनीशक्ति) के माध्यम से। हम मान लेते हैं कि वह पतंजलि की इस प्राक्कल्पना से जुड़ गये थे कि नैसर्गिक मनुष्य को जागृत करके और प्रकृति के अंतर्तम में गहन ध्यान करके वह पूरे ब्रह्मांड का अंश होने के पुराने विचार को समाहित करते, नये भौतिक विज्ञानों की खोजों से संपन्न, उन्होंने दोनों का संश्लेषण करने का प्रयास किया। उनका स्वर टेनीसन के साथ मिलता दिखता है–दीवार की दरार में बैठे बनफूल, जान पाता कि तू क्या है... तो जान लेता कि भगवान क्या है और मानुष क्या।

लेकिन वे अनुभूत अनुभव चाहते थे, वास्तविकता से अपनी जुड़ाव की घोषणा करने से पहले सारे अनुभव को खुद में समाहित करना चाहते थे। इसलिए निजी अनुभव उनके लिए एक कसौटी था। वह कबीर को उद्धरित करते है:

'इस देह में स्वर्ग का उपवन है, इसी में सातों सागर और अनगिनत तारे, यहीं प्रकट होता है सिरजनहार।'

तो उनकी स्वीकृति किसी मनुष्य के रचे देवता के सामने पूर्ण समर्पण नहीं था। वे मानते थे कि मनुष्य अपनी रचनात्मकता के माध्यम से ही सच्चा मानव हो सकता है। मनुष्य की भावना वास्तविकता को जीवंत बना सकती है।

वे कहते हैं, कागज की जो वास्तविकता है वह साहित्य की वास्तविकता से एकदम ही अलग है। कागज को खाने वाले दीमक से आविष्ट मानस के लिए साहित्य एकदम ही अस्तित्वहीन है, मनुष्य के मानस के लिए साहित्य में सत्य का कहीं बड़ा मूल्य है। ठीक इसी तरह, अगर कोई सत्य ऐसा है जिसका मानव के मानस से कोई ऐंद्रिक या तार्किक संबंध नहीं है तो जब तक हम मनुष्य बने रहेंगे तब तक वह शून्य रहेगा।

क्योंकि ठोस यथार्थ का ऐंद्रिक अनुभव सभी पुरुषों और स्त्रियों के लिए संभव है इसलिए सामूहिक अवचेतन के माध्यम से हम जुड़े हुए हैं, पूरी तरह नहीं लेकिन तत्वत: एक से व्यक्ति होने के स्तर पर।

स्त्री और पुरुष अपना होना तभी पा सकते हैं जब वे एक–दूसरे से प्रेम करते हों। क्योंकि प्रेम एक जैविक मानवीय कामना है, मानवीय संबंधों का उत्स, सर्जना का आधार, परिवार, समुदाय, समाज और राज्य की एकता।

तो टैगोर के मानवतावाद का सत्व है आदिम संबंध का आग्रह। फर्क यह है कि उन्होंने अपने मानवतावाद को रिलीजन ऑफ मैन

कहा, शायद उसे उन्हीं परम्परा निष्ठताओं जैसा धार्मिक और पवित्र बनाने के लिए जिन्हें उन्होंने छोड़ा था।

लेकिन धर्म शब्द का इस्तेमाल करते या ईश्वर को पिता कहते उनका विचार यह तो बिल्कुल नहीं था कि मनुष्य कभी न बनें, जिनकी दुल्हनें उनके लिए दूसरे चुनें और जिनकी स्त्रियां अपने पतियों की अनुचारिका बनी रहें और यह सब परमात्मा के नाम पर होता हो।

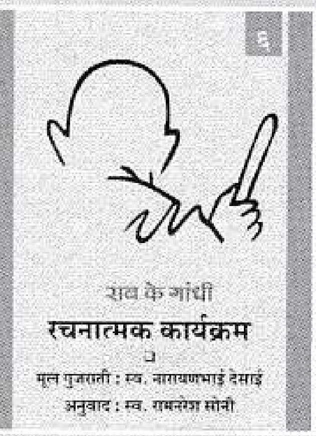
अपने व्यक्तित्व को ब्रिटिश पूर्वी भारत के एक स्थानिक से अलग विस्तार देने के लिए उन्होंने कई बार संसार भर के देशों की यात्राएं कीं। और हमारे देश को पश्चिमी ज्ञान की समृद्धि से वंचित रखने की साम्राज्यवादी चाल के बावजूद उन्होंने यूरोपियन रेनेसां, सुधार और वैज्ञानिक प्रगति की प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी ली।

सच तो यह है कि लेखन और ध्यान चिंतन में समय बिताने के बाद वह बॉउल गायकों की ही तरह भटकना पसंद करते थे।

और पश्चिम में १६ वीं सदी के अंतिम दौर के कलावादी कलाकारों के विपरीत वे कार्रवाई में विश्वास रखते थे। उन्होंने नाटक लिखे और उनमें अभिनय किया। वे अपने छात्रों के साथ नृत्य करते थे और उन्होंने देश के विभिन्न हिस्सों से नर्तकों को आमंत्रित किया। उन्होंने गीत रचे और सामूहिक गायन को विद्यालय के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया। अपने प्रिय कलाकार नंदलाल बोस और अन्य कलाकारों को ला कर उन्होंने विश्वभारती में कला भवन की स्थापना की। और आसपास के आदिवासियों और ग्रामीणों के साथ संवाद, व्यवहार बनाने के लिए अपने छात्रों और अध्यापकों को प्रेरित करके उन्होंने उनकी मध्यवर्गीय, अपने आप में सिमटे रहने की प्रवृत्ति को खत्म किया। वे लोक के साथ सीधे सम्पर्क के मूल्य में आस्था रखते थे, ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने बॉउलों से खरी और सीधी अभिव्यक्ति के साथ लिखना सीखा था। जहां तक संभव हो, वे मौलिक रूपकों का इस्तोमाल करते।

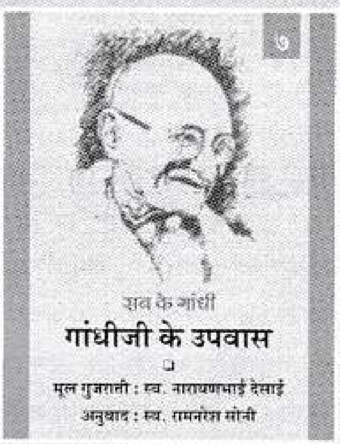
'माई ब्वायहुड डेज' जैसे आत्मवृत्तात्मक लेखन में उन्होंने अपने और अपने परिवार के बारे में बहुत निर्द्वंद्व भाव से लिखा है।

बंकिमचन्द्र चटर्जी के भूरे सामंतों की सामंती व्यवस्था से आगे जाते हुए रवीन्द्रनाथ ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के पाखंडों और छलछंदों को सामने लाने का साहस दिखाया। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप दूसरों के चुने हुए व्यक्ति से विवाह बंधन में बंधे होने पर भी, प्रेम में सम्पूर्णता पाने की स्त्रियों की इच्छा को आभासित किया। 'गोरा' में उन्होंने उसके आत्मसंतुष्ट नायक के चरित्र के माध्यम से अंध देशभक्ति की आलोचना की। 'घरे बाइरे' में विमला के प्रतिनिधिक आवेगों के माध्यम से उन्होंने भारतीय स्त्री के स्पर्शकातर संवेदन को प्रस्तुत किया। जेम्स



गांधी जी को देश की उस काल की दशा बदलनी थी। उनको गरीबी दूर करनी थी, बेकारी दूर करनी थी, असमानता दूर करनी थी, गंदगी दूर करनी थी, रोग दूर करने थे, अज्ञान दूर करना था। ये तमाम दूर करने में देश की गुलामी आड़े आती थी। अत: सबसे पहले उनको गुलामी दूर करनी थी। इस तरह सम्पूर्ण व्यवस्था खड़ी करना चाहते थे। वे उसे अहिंसक समाज व्यवस्था कहते थे। इस नयी व्यवस्था के बारे में भी उनके मन में स्पष्ट कल्पना थी। इस व्यवस्था को खड़ा करने के लिए वे तब तक रुकने को तैयार नहीं थे, जब तक कि गुलामी न हट जाए। बल्कि उनके पास ऐसा कार्यक्रम था कि जो देश से गुलामी को हटा भी सके और नयी अहिंसक समाज की नीवं भी रख सके।

❑❑❑ सं.



गांधी जी के उपवासों में धार्मिकता नहीं थी, यह तो नहीं कह सकते, पर उनके उपवासों और धार्मिक उपवासों की प्रक्रिया में मूल धार्मिक भावना के साथ, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिकता विद्यमान थी। जिनके कारण गांधीजी के उपवासों को नितांत नया ही परिमाण मिलता था।

❑❑❑

सं.

ज्वायस के 'युलिसिस' औरव वर्जिनिया वुल्फ के 'मिसेज डैलोवे' के प्रकाशन से बहुत पहले ही वह उपन्यास में स्ट्रीम ऑफ कांशसनेस की शुरूआत कर चुके थे।

अपने तमाम लेखन, गीत, कविता, आख्यान और महाकाव्य, और साथ उपन्यासों में, विचार से वे हमारे देश में पहले आधुनिकतावादी थे। और इसलिए अपनी कुछ बेहद गहन रचनाओं में भी वे एक सख्त रूपवादी या शुद्ध लेखक नहीं बल्कि एक रूमानी प्रयोगवादी हैं। उनका हर रोज कुछ न कुछ लिखना अपरिहार्य रूप से उनके अधिकांश कृतित्व को नोटबुक जैसा बनाता है। लियोनार्दो द विंची की नोटबुक की तर्ज पर और कवि के तौर पर उनकी तुलना मिल्टन या टेनिसन या ब्राउनिंग से करने या गल्प लेखक के तौर पर उन्हें टॉल्सटॉय, तुर्गनेव या दोस्तोयव्स्की या चेखव के बराबर ठहराने का कोई मतलब नहीं है। उन्होंने उस तरह नये भारत का पूर्वाभास नहीं करवाया था जैसे पुश्किन ने रूसी पुनरुत्थान का करवाया था। लेकिन वह रवीन्द्रनाथ टैगोर थे, राजाराम मोहन राय द्वारा उद्घाटित रेनेसॉं से फूटते और एक पतनशील, अनुष्ठानों से आक्रांत पुनर्जागरणवादी समाज से उभरते एक बंगाली, उनके चुनाव अपने पूर्ववर्तियों से तो अलग थे ही पश्चिम में अपने समकालीनों से भी अलग थे। उन्होंने खुद से पूछा मैं कौन हूं ? मैं कहां से आया ? और मैं कहां जा रहा हूं? और फिर लयबद्ध अंत: प्रेरणा के प्राचुर्य से लिखा।

डब्ल्यू. बी. यीट्स ने उनकी प्रतिभा को पहचाना तो उसका कारण शायद यह था कि आयरलैंड भी अपने जमे हुए अतीत और ब्रिटिश शासन के अपने साम्राज्यवादी वर्तमान से बाहर आ रहा था और इन दो उभरते समाजों में दोनों कवियों की उत्प्रेरणाएं एक सी थीं, यीट्स ने खुद को बार्ड कहा। यह नाम टैगोर के लिए भी समुचित है जो लोककवियों और गायकों से कबीलदारी चाहते थे।

और यह भी याद रखा जाना चाहिए कि वे निरंतर वृद्धिमान रहे और अक्सर अपने विचार भी बदलते रहते थे। उदाहरण के लिए अपने जीवन के प्रौढ़ वर्षों में यूनिवर्सिटी ऑफ कैल्कटा में साहित्य पर दिये अपने भाषणों में उन्होंने 'समलयता' को कविता का आदर्श बताया। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उन्होंने तत्त्वों की अव्यवस्था में डुबकी लगायी और अंतत: 'असमलयता' को साहित्य में अपरिहार्य मानने लगे।

असल में तो रूपहीन रूप के प्रति उनका आग्रह बढ़ता गया और वह बातचीत के साधारण शब्दों का इस्तेमाल करने लगे। अफ्रीका के बारे में उनकी कविता के वेदना से भरे शब्दों से यह स्पष्ट है-

एक उद्‌भ्रांत समय में, सुदूर अतीत में
जब खुद सिरजनहार ने खुद को बुरी तरह
नाराज कर लिया
अपनी सर्जना को फिर-फिर नष्ट किया,
सागर ने अपनी क्रुद्ध बांहों से पूर्वी भूमि

कुलसुम सयानी : हर एक, सिखाए एक को



कुलसुम सयानी प्रसिद्ध रेडियो एनाउंसर अमीन सयानी की मां थी। कुलसुम सयानी के पिता बापू के निजी चिकित्सक थे। बापू के संपर्क में रहने के कारण सयानी को शिक्षा का महत्व समझ में आ गया था। उन्होंने ऐसे समय में निरक्षरता उन्मूलन का काम किया जबकि महिलाओं को यह कहकर चुप करा दिया जाता था कि पढ़ने लिखने की जरूरत ही क्या है? कुलसुम सयानी अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की महासचिव भी रहीं। उन्होंने महिला सशक्तिकरण के लिए अपने को समर्पित कर दिया था। उन्होंने साक्षरता प्रसार की कई योजनाएं बनाई उनका विशेष मिशन था हर एक, सिखाए एक को।

दानिश खान के इस आलेख को पढ़कर पाठक कुलसुम सयानी के जीवन दर्शन को जान सकेंगे और उनसे प्रेरणा ले सकेंगे। ❑ सं.

कुलसुम सयानी का नाम कई लोगों को शायद याद न आए लेकिन उनका जीवन और काम वास्तव में उल्लेखनीय रहे हैं। प्रसिद्ध रेडिया एनाउंसर अमीन सयानी की मां, कुलसुम १९०० में पैदा हुई थीं। उनकी प्रेरणा कोई और नहीं महात्मा गांधी थे। उनके पिता गांधीजी के निजी चिकित्सक थे। गांधी जी के साथ सयानी की बातचीत और उनके परिवार में शिक्षा को जो महत्व दिया जाता था उससे उन्हें निरक्षरता उन्मूलन की जरूरत का अहसास हुआ। १९३८ में १०० रुपये की पूंजी के साथ उन्होंने दो शिक्षकों को रखा और छात्र ढूंढने के लिए मुस्लिम इलाकों के चक्कर लगाए। अभी भी महिला शिक्षा की ओर रूढ़िवादी रवैये को देखते हुए, उस समय लड़कियों को शिक्षित करने के महत्व के बारे में परिवारों को समझाने के लिए सयानी के प्रयासों की कल्पना कीजिए। ऐसा भी होता था जब लोग हैरानी से, 'महिलाओं को पढ़ना सीखने की क्या जरूरत है?' कह कर उनके मुंह पर दरवाजा बंद कर देते थे।

उनके अथक प्रयासों ने साबित कर दिया है कि शिक्षा के क्षेत्र में काम करने की जबरदस्त जरूरत थी, जिसके लिए एक और अधिक संगठित संरचना की जरूरत थी। उनके अनुभव ने उन्हें कई समितियों का हिस्सा बनाया, जिनका गठन बंबई अब मुंबई में वयस्कों के बीच साक्षरता बढ़ाने के लिए किया गया था। वे पहली राष्ट्रीय योजना समिति के साथ जुड़ी हुई थी जिसकी स्थापना मुंबई में १९३८ में कांग्रेस सरकार द्वारा की गई थी। १९३९ में गठित, मुंबई शहर सामाजिक शिक्षा समिति ने सयानी से मुस्लिम महिलाओं की सेवा के लिए उनके ५० केन्द्रों को चलाने के लिए कहा। धीरे-धीरे और लगातार कक्षाएं बढ़ी और संख्या ६०० पर पहुंच गई। निश्चित रूप से उनके प्रयास केवल मुस्लिम समुदाय के लिए सीमित नहीं थे। १९४४ में उन्हें अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का महासचिव भी नियुक्त किया गया और उन्होंने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए काम किया।

लेकिन उन्हें शिक्षा के प्रसार के लिए सबसे अधिक याद किया जाता है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (१० मार्च, १९७०) के नई दिल्ली संस्करण ने कहा, '१९३९ से, जब उन्होंने (कुलसुम सयानी) बंबई शहर सामाजिक शिक्षा समिति का कार्यभार संभाला, पांच लाख वयस्क पांच भाषाओं-उर्दू, हिन्दी, गुजराती,

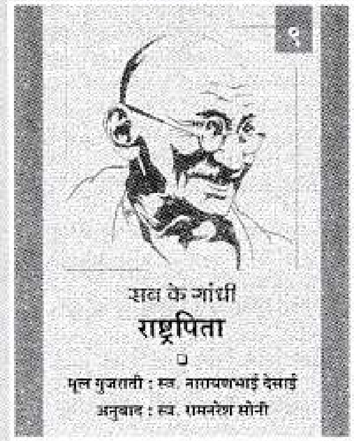
मराठी और तेलगु में से एक के माध्यम से साक्षर बन गए हैं। उनके दिन स्कूलों में बच्चों को वयस्कों को पढ़ाने के लिए उत्साहित करने की जल्दी में और रात साक्षरता की नई योजनाओं का सपना देखने में बीतती है।'

सयानी बहुत व्यावहारिक थीं और विशेष रूप से 'हर एक, सिखाए एक को' सहित उन्होंने साक्षरता प्रसार के लिए अनेक योजनाएं शुरू की। वे कई स्कूलों में जाया करती थीं और युवा छात्रों को हर दिन एक वयस्क को पढ़ाने के लिए १५ मिनट समर्पित करने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। इस योजना के तहत, छात्रों को हर दिन अपने परिवार, पड़ौस या घरेलू सहायकों में किसी भी वयस्क को एक नया अक्षर सिखाना और पढ़ना होता था। नैतिक मूल्यों के महत्त्व के प्रति अत्यधिक जागरूक, वे छात्रों को वयस्कों से उन्हें एक लोक कथा या महाकाव्यों से एक कहानी सुनाने का अनुरोध करने के लिए प्रोत्साहित करती थीं।

एक बार उन्होंने कहा था, 'निम्न मध्यम वर्ग की महिलाएं, जो काम करने के लिए मजबूर हैं, उनके पास अपने बच्चों को स्कूल के बाद सड़कों पर छोड़ने के अलावा कोई चारा नहीं है, जबकि जो फैशनबेल हैं, ब्रिज और माह-जोंग पार्टियों के बाद बच्चों के लिए उनके पास कोई समय नहीं बचता।'

एक दूसरी साक्षरता पहल जो उन्होंने शुरू की वो थी-जोर से पढ़ना। स्कूल के छात्रों को दोस्तों और वयस्कों को इकट्ठा करने और हर एक को बाहर जोर से पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उनका विश्वास था, नव-साक्षरों के आत्म विश्वास और रुचि में सुधार के लिए यह करना आवश्यक था। इन योजनाओं की सफलता सुनिश्चित करने लिए वे हर सप्ताह छात्रों से मिलने और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए तीन से चार स्कूलों का दौरा करती थीं। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान जेलों में सड़ रहे सैकड़ों राजनीतिक कैदियों ने उनके द्वारा निकाले जाने वाले अखबार 'रहबर' को जोर से पढ़कर अपनी हिन्दुस्तानी में सुधार किया। १९४० में शुरू हुआ 'रहबर' नए शिक्षार्थियों के उद्देश्य से शुरू किया गया था। यह तीन लिपियों में प्रकाशित होता था-नागरी, उर्दू और गुजराती। 'रहबर' की भाषा हिन्दुस्तानी-हिन्दी और उर्दू का मिश्रण थी। वो ऐसा समय था जब दोनों भाषाओं में भेद और अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के प्रयासों में हिन्दी के समर्थक भारी संस्कृत शब्दों का उपयोग कर रहे थे और उर्दू के समर्थक भाषा को फारसी और अरबी से बांध रहे थे।

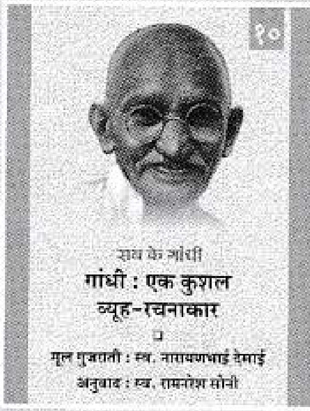
गांधीजी नागरी में लिखी हिन्दुस्तानी या उर्दू लिपि के पक्ष में थे। 'रहबर' ने गांधीजी के हिन्दुस्तानी वाले विचार को आगे ले जाने की सोची। १६ जून, १९४५ दिनांकित एक पत्र में गांधीजी ने सयानी को बेटी कुलसुम के रूप में संबोधित किया और लिखा है-'मुझे 'रहबर' के हिन्दी और उर्दू को जोड़ने का मिशन अच्छा लगा। इसे सफलता मिले।' अखबार देश भर की जेलों में



गांधी जी ने इतने विशाल और इतनी विविधता वाले देश को एक भावना से जोड़ा या गढ़ा। उन्होंने अलग-अलग पुष्प एकसूत्र में बांधकर सिर्फ माला ही नहीं बनाई वरन् उसका एक गुलदस्ता बनाया। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस राष्ट्र को मानवों का महासागर कहा था। सागर-जल में जिस प्रकार सारी नदियां मिलकर एकरूप हो जाती हैं, वैसे ही यहां सारी विभिन्नताएं एकता में समा जाती हैं।

❑ ❑ ❑

सं.



दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्य था, जिसके बारे में कहा जाता था कि इस साम्राज्य का सूर्य कभी अस्त नहीं होता, उस साम्राज्य को गांधीजी ने लगभग अकेले ही हिला दिया। गांधीजी द्वारा शुरू किये गये आंदोलन के कारण इतिहास में एक ऐसा दौर आया था जिससे एक के बाद एक बहुत-से साम्राज्य अस्त हो गये।

❑ ❑ ❑

सं.

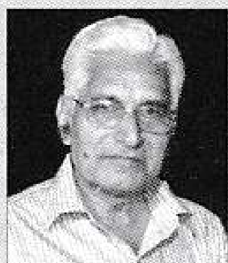
बंद सैकड़ों राजनैतिक कैदियों द्वारा पढ़ा जाता था, गांधीजी की हिन्दुस्तानी सीखने में रुचि रखने वाला हर कोई अखबार लेता था। भारत की स्वतंत्रता से पहले के महीनों में जब संविधान सभा में विचार विमर्श शुरू हुआ, भाषा विवाद फिर से भड़क उठा। गांधीजी द्वारा सयानी को २२ जुलाई, १९४७ को लिखे पत्र से उनके हिन्दुस्तानी के साथ रहने के संकल्प का पता चलता है। उन्होंने लिखा है- 'भगवान जानता है कि आगे हमारे लिए क्या है। पुराने चीजें नई को जगह देने के लिए बदल रही हैं। कुछ निश्चित नहीं है। सी.ए. द्वारा जो भी फैसला किया जाएगा, तुम्हारे और मेरे लिए दो लिपियों के साथ हिन्दुस्तानी रहेगी।' सयानी ने दुनिया भर में शिक्षा के कई अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी भारत का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने १९५३ में पेरिस (फ्रांस) में यूनेस्को सम्मेलन में भाग लिया और विचारों की सहभागिता की और कई देशों के प्रतिनिधियों के साथ बात कर नए दृष्टिकोण प्राप्त किए। उनकी अन्य रुचि शांति के साथ भारत और पाकिस्तान के बीच समझ बढ़ाने को बढ़ावा देने में थी। उनके एक कार्यकर्ता के रूप में अच्छी पहचान से उन्हें दोनों देशों में शीर्ष नेताओं के साथ औपचारिक बैठक में मदद मिलती थी। पाकिस्तानी राजनेताओं में, अन्य वरिष्ठ नेताओं के साथ उन्होंने पाकिस्तानी राष्ट्रपति, गुलाम मोहम्मद और अयूब खान से सीधे मुलाकात की।

भारत में 'रहबर' के संपादक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा से उन्हें नेहरू, बी.जी.खेर, वी.के. कृष्ण मेनन, रफी अहमद किदवई और इंदिरा गांधी के साथ मिलने का समय लेने में मदद मिली। उन्हें पाकिस्तान के साथ दोस्ती बनाने के उनके प्रयासों के लिए भारत में सभी रंग के नेताओं से प्रोत्साहन और समर्थन मिला। हालांकि, नेहरू और रफी किदवई जो पाकिस्तान के साथ संबंधों में सुधार लाने के सरोकार से इत्तेफाक रखते थे उनके निधन के बाद, उन्होंने अपनी ऊर्जा हिन्दुस्तानी प्रचार के लिए समर्पित कर दी। सयानी का जीवन कई लोगों के लिए एक प्रेरणा है। जब उनकी शादी हुई तब वे केवल १८ साल की थीं। उन्होंने अपने परिवार और सामाजिक रुझान को बराबर जोश से निभाया। उनके बेटे, हामिद और अमीन दोनों रेडियो प्रसारकों ने अपनी खुद की पहचान बनाई। अमीन सयानी 'हिन्दुस्तानी में स्पष्ट और विश्वसनीय संचार की प्रारंभिक शिक्षा' का श्रेय 'रहबर'के प्रकाशनों में अपनी मां की सहायता में शामिल होने को देते हैं।

२० साल अकेले चलने के बाद, १९६० में बुढ़ापे और नौकरशाही ने उन्हें 'रहबर' बंद करने के लिए मजबूर कर दिया। वे हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के साथ जुड़ी रहीं और कई व्याख्यान और सेमिनार आयोजित किए। हालांकि, उन्होंने निरक्षरता उन्मूलन के अपने आजीवन जुनून से कभी ध्यान नहीं हटाया। १९६० में उन्होंने पद्मश्री प्राप्त की और १९६९ में उन्हें नेहरू साक्षरता पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। सयानी, जिनकी १९८७ में मृत्यु हो गई, उस युग से थी जहां लोग बिना किसी उम्मीद के राष्ट्र को अपना सर्वश्रेष्ठ देने में विश्वास रखते थे। ❑

जनवरी-मार्च, २०२० समरथ से साभार

बा के बगैर बापू का क्या वजूद ?



भगवती प्रसाद गौतम

❑

प्रस्तुत आलेख में बाल साहित्यकार एवं गांधी विचारधारा में रुचि रखने वाले श्री भगवती प्रसाद गौतम ने गांधी के बारे में बहुत ही बारीकी और गहराई की जानकारियां हमारे सामने प्रस्तुत की हैं। उनका कहना है कि बापू के महान बनने में कस्तूरबा की अहम भूमिका थी। वे पूरी जिंदगी दृढ़ता और निर्भीकता के साथ एक डाल के रूप में उनके साथ खड़ी थीं और वे उनका हथियार भी थीं। गांधी जयंती पर सभी पाठक बापू को करीब से जान पाएंगे।

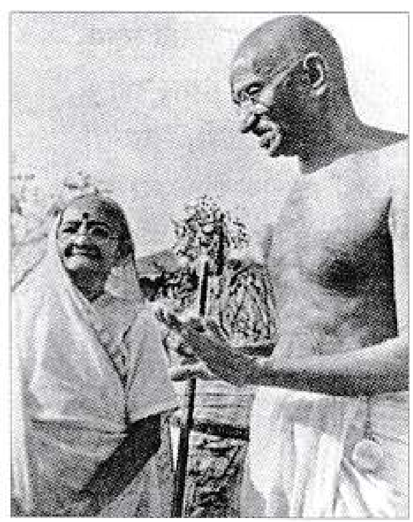
❑ सं.

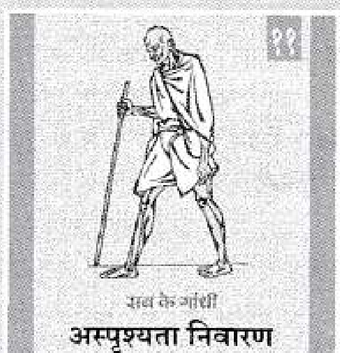
एक बार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अनायास ही महात्मा गाँधी से पूछ लिया, बापू, अनुभवों के इतने लंबे दौर के बाद भी क्या आप इस धारणा पर अटल हैं कि ईश्वर ही सत्य है?

'नहीं', बापू ने तुरंत उत्तर दिया, अब तो मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है।...और हम सब उसी 'सत्य' की चिंगारियाँ हैं।

महात्मा गाँधी की एक कालजयी कृति है 'हिंद स्वराज्य', जिसके सृजन शताब्दी वर्ष (२००९) में चर्चाओं, आयोजनों और नए संस्करणों की जबरदस्त धूम रही। इस छोटी-सी पुस्तक में पाठक और संपादक के संवादों को बीस अध्यायों में इस तरह संजोया गया है कि गाँधी-चिंतन का समग्र सार बड़ी ही सहजता से समझा जा सकता है। इसी पुस्तक में एक स्थल पर जब पाठक शंका व्यक्त करता है, आप जो कहते हैं उससे मुझे लगता है कि सत्याग्रह कमजोर आदमियों के लिए काफी काम का है, लेकिन जब वे बलवान बन जाएं तब तो उन्हें तोप (हथियार) ही चलाना चाहिए। तो संपादक रूप में गाँधी जी टोकते हैं, यह तो आपने बड़े अज्ञान की बात कही। सत्याग्रह सबसे बड़ा- सर्वोपरि बल है। वह जब तोपबल से ज्यादा काम करता है तो फिर कमजोरों का हथियार कैसे माना जाएगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोपबल रखने वाले के पास हो ही नहीं सकती।

इसी के समांतर अपने अनेकानेक अनुभवों से रची गई और आज भी प्रासंगिक बापू की अपनी जीवनी 'आत्मकथा' (सत्य के प्रयोग) की प्रस्तावना में भी वे स्पष्ट शब्दों में कह जाते हैं, '...मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल- वाचिक सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य केवल





अपनी मृत्यु से पहले दिन भी गांधीजी ने लिखा था कि आर्थिक और सामाजिक आजादी–विहीन आजादी अधूरी है। जैसे गुलामी को सहन करने को वे तैयार नहीं थे, वैसे ही गरीबी, भुखमरी, आर्थिक विषमता या समाज में ऊंच–नीच की भावना को भी वे सहन करने को तैयार नहीं थे।

❑ ❑ ❑

सं.

कल्पित सत्य नहीं है, अर्थात् परमेश्वर ही है।...यही नहीं, 'आत्मकथा' के आखिरी पायदान 'पूर्णाहुति' में भी वे इसी धारणा को व्यक्त करते हैं कि सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया।

वे शुरुआत में ही जाहिर कर देते हैं कि उनके प्रयोगों में आध्यात्मिक का अर्थ है नैतिक, धर्म का अर्थ है नीति तथा आत्मिक भाव से अपनाई गई नीति है धर्म और ये जीवन मूल्य उन्हें माता–पिता से विरासत में मिले। पिता करमचंद गाँधी (पोरबंदर) के बारे में भीतर व बाहर यही मान्यता व्याप्त थी कि वे जितने स्वाभिमानी और क्रोधी थे उतने ही सत्य के पक्षधर व निष्ठावान भी रहे। माता पुतलीबाई स्वयं साध्वी व संतोषी वृत्ति की महिला थीं, साथ ही पूजा–पाठ और व्रत–उपवास के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित। वैसे करमचंद गाँधी के एक के बाद एक चार विवाह हुए थे जिनमें अंतिम पत्नी थी पुतलीबाई। उनकी कोख से एक पुत्री और तीन पुत्रों का जन्म हुआ। उनमें अंतिम संतान थे मोहनदास (२ अक्टूबर १८६९) जिन्हें कालांतर में 'महात्मा' जैसे स्नेहिल एवं संमान्य संबोधन प्राप्त हुए।

खासियत यह है कि सत्य की साधना करते हुए बापू को कई अवसरों पर न कहने लायक बातें भी पूरी ईमानदारी और दृढ़ता से कहनी पड़ीं। उन्हीं के शब्दों में, 'यह लिखते हुए मन अकुलाता है कि तेरह साल की उम्र (१८८३) में मेरा विवाह हुआ था। आज मेरी आँखों के सामने बारह–तेरह वर्ष के बालक मौजूद हैं, जिन्हें देखता हूं और अपने विवाह का स्मरण करता हूं तो मुझे अपने ऊपर दया आती है और इन बालकों को मेरी स्थिति से बचने के लिए बधाई देने की इच्छा होती है। तेरह वर्ष में हुए अपने विवाह के समर्थन में मुझे एक भी नैतिक दलील सूझ नहीं सकती।'

ध्यातव्य है कि इस बाल विवाह से पूर्व बालक मोहनदास की तीन बार सगाई हुईं जिनका उन्हें खुद को कोई अता–पता नहीं, सिर्फ इतना सुना था कि दो कन्याएं एक के बाद एक चल बसीं और तीसरी सगाई हुई सात वर्ष की आयु के आस–पास कस्तूरबाई के साथ। हाँ, उन्हें विवाह का स्मरण जरूर है। उस समय विवाह जैसी रीति का बाल सुलभ शौक मन में लिए मंडप के क्रिया कलाप पूरे किए, सात फेरे लिए, एक–दूसरे को कंसार (गेहूं से बनी पारंपरिक खाद्य–वस्तु) खाया–खिलाया, घर पहुंचे और बस, वर–वधू साथ रहने लगे। दो अबोध बालक भव– सागर में कूद पड़े। कस्तूरबाई और मोहनदास...(अब पाठकों के लिए बा और बापू)।

मन में अजीब–सा भय, साथ ही कुछ लाज–शरम भी। भाभी की सीख–सिखावन सब जाती रही। खैर, जान–पहचान हुई ही। उम्र में दोनों बराबर–से। वैसे कस्तूरबाई लगभग छह माह बड़ी मगर मोहन पर पति–सत्ता का भूत सवार होने लगा। बाद में बापू ने स्वीकार भी किया–'यह बात हमारे बीच दुखद झगड़े की

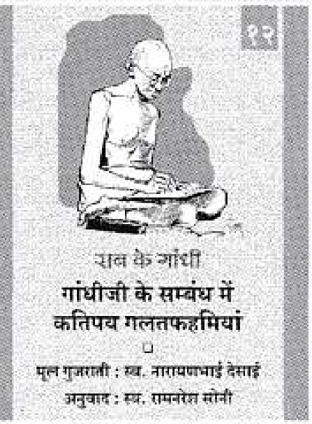
जड़ बन गई।...हम बालकों के बीच बोलचाल का बंद होना एक मामूली चीज हो गई। कस्तूरबाई ने जो स्वतंत्रता बरती उसे मैं निर्दोष मानता हूँ। जिस बालिका के मन में पाप नहीं है, वह देव-दर्शन के लिए जाने पर या किसी से मिलने जाने पर दबाव क्यों सहन करे? अगर मैं उस पर दबाव डालता हूँ तो वह भी मुझ पर क्यों न डाले?- यह तो अब समझ में आ रहा है।'

ऐसा नहीं है कि इससे उनके आपसी रिश्तों में कटुता अथवा खटास आती हो। वस्तुतः बापू बा को एक आदर्श स्त्री के रूप में देखना चाहते थे। वे निरक्षर थीं। सीधी, सरल, परिश्रमी किंतु मितभाषी...बहुत कम बोलने वाली। बापू उन्हें साक्षर ही नहीं, सही मायनों में शिक्षित स्त्री बनाना चाहते थे। लेकिन काठियावाड़ी घूँघट प्रथा, बड़ों के सामने पत्नी से दूरी जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों और स्वयं की विषयासक्ति ने अपेक्षित शिक्षा के मार्ग में व्यवधान पैदा किए। उनके सभी प्रयास निष्फल ही साबित हुए और बा मात्र पत्र लिख सकने और सामान्य गुजराती समझ पाने तक ही सीमित रह गईं।...और यह भी कि स्वयं की छोटी-सी भूल और पिता की मृत्यु से बापू को जो आघात लगा, वह तो अपनी जगह था ही, किंतु बाद में कस्तूरबा की कोख से जो शिशु जन्मा, वह भी दो-चार दिन में ही चल बसा। बापू ने आत्मकथा में स्पष्ट संकेत किया, 'कोई दूसरा परिणाम हो भी क्या सकता था? जिन माँ-बापों को अथवा जिन बाल दंपति को चेतना हो, वे इस दृष्टांत से चेतें।'

सुमित्रा कुलकर्णी (महात्मा गाँधी की पौत्री) का एक लेख किसी अखबार में पढ़ने को मिला। उन्होंने अपनी युवावस्था के दिनों की एक घटना का जिक्र करते हुए लिखा था, मुझे याद है, सोलहवें जन्म दिन पर मैं बापू को प्रणाम करने गई। बापू ने कहा, एक बात याद रखना, किसी से डरना मत। निर्भय होकर जीना, ढेर सारी बुराइयों से बच जाओगी।...सच, बापू चाहते थे, हर व्यक्ति अपनी अतिरिक्त शक्ति को जगाए, हींन भावना से बचे। जीवन सरल, आडंबरमुक्त, अपेक्षारहित हो तो कौन दुख दे सकता है?

बापू का सान्निध्य पाकर ये सब मूल्यपरक वृत्तियाँ बा के जीवन में आ उतरी थीं। वे बापू के साथ कदम से कदम मिलाकर चलीं। आजादी की लड़ाई में कई बार आगे बढ़कर मोर्चा संभालने में भी पीछे नहीं रहीं। बा-बापू के गृहस्थ जीवन के इकसठ वर्ष (१८८३-१९४४) का सफर निर्बाध गति से चला। वस्तुतः आंदोलन के चलते बापू के साथ बा को भी आगाखाँ महल में बंदी बनाकर रखा गया। उसी दौरान लंबी बीमारी की वजह से अंग्रेज़ सरकार ने अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए बा को मुक्त करने का प्रस्ताव रखा, मगर 'बा ने यह कहकर उसे ठुकरा दिया कि जब देश की असंख्य महिलाएं जेलों में बंद हैं तो मैं कैसे मुक्त हो सकती हूँ?'

यों बापू बालपन से ही शारीरिक दृष्टि से कमजोर तो थे ही,



जिसने अपनी किताब दुनिया के सामने खुली रख दी हो, तो वहां उस किताब के अलग प्रकार के भाष्य होना और उसमें भी गलतफहमियों का होना संभव है। कई समझदारियां ऐसी होती हैं कि जिन्हें सही अर्थ में नासमझी नहीं कहा जा सकता। मतभेद या विरोध, ईर्ष्या या तेजोद्वेष आदि के कारण जानबूझकर फैलाई जाने वाली ये बातें ऐसी होती हैं कि जिन्हें नासमझी के बजाय अफवाह या दुष्प्रचार कहना अधिक उचित होगा। ऐसे प्रचार के पीछे भी कुछ गलतफहमी होना संभव मान कर हम उनकी गिनती भी गलतफहमी में कर सकेंगे।

❑❑❑ सं.



फीनिक्स आश्रम में बापू महिला सभा में बोलते हुए आह्वान कर रहे थे कि महिलाएं भी स्वेच्छा से सत्याग्रह संग्राम में भाग ले सकती हैं। बा भी उस सभा में उपस्थित थीं और बड़ी शांति से सबकुछ देख–सुन रही थीं। मगर जब सभा समाप्त हुई तो उन्होंने बापू से कहा, आप सभी महिलाओं को सत्याग्रह में सम्मिलित होने को कहते हैं तो मुझसे क्यों नहीं कहते?

❑❑❑ सं.

किशोरावस्था तक भी चोर, भूत, साँप आदि का भय उन्हें घेरे ही रहता था। रात्रि को कहीं अकेले निकलना, अंधेरे का सामना करना, रोशनी के बिना शयन कर पाना बहुधा उनके लिए कठिन ही रहा। लेकिन भीतर ही भीतर हीन भावना के चलते वे ऐसी बातें बा से भी साझा नहीं कर पाते थे, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उनकी अर्धांगिनी कहीं ज्यादा मजबूत और साहसी है, साँप जैसे जीवों से डरना तो उन्होंने कभी जाना ही नहीं। मगर आगे चलकर कस्तूरबा की यही स्वच्छंदता, निर्भीकता और दृढ़ता सत्याग्रही बापू की ढाल भी बनी और हथियार भी। डॉ. प्रकाश मनु ने अपनी पुस्तक **'जो खुद कसौटी बन गए' के एक अध्याय में इस विचार को रेखांकित किया है कि महात्मा गांधी देश की राजनीति के लिए इतना बड़ा काम इसीलिए कर पाए क्योंकि उन्हें कस्तूरबा जैसी दृढ़निश्चयी स्त्री का साथ मिला।... बिलकुल साधारण–सी दिखने वाली इस स्त्री में इतना बड़ा मन और इतना आत्मविश्वास था कि उसे याद करके आज भी हम हैरान रह जाते हैं।**

एक प्रसंग याद आता है दक्षिण अफरीका का। फीनिक्स आश्रम में बापू महिला सभा में बोलते हुए आह्वान कर रहे थे कि महिलाएं भी स्वेच्छा से सत्याग्रह संग्राम में भाग ले सकती हैं। बा भी उस सभा में उपस्थित थीं और बड़ी शांति से सबकुछ देख–सुन रही थीं। मगर जब सभा समाप्त हुई तो उन्होंने बापू से कहा, आप सभी महिलाओं को सत्याग्रह में सम्मिलित होने को कहते हैं तो मुझसे क्यों नहीं कहते?

बापू पल भर चुप रहे। पर बा कैसे चुप रह पातीं, कहिए न, क्या मुझमें जेल जाने का साहस नहीं है? तो बापू ने टोका, तुम वहाँ के कष्टों से डर गईं तो मेरी स्थिति क्या होगी? पर बा तो बा ही थीं। उन्होंने बापू के साथ कंधे से कंधा मिलाते हुए हर तरह की ज़िम्मेदारी उठाना और चुनौतियों से टकराना सीख लिया था। वे बोलीं, मैं सत्याग्रह में हिस्सा जरूर लूँगी। यदि मुझमें थोड़ी–सी भी बेचैनी या घबराहट का अनुभव हो तो आपको मुझसे किसी भी तरह के रिश्तों को तिलांजलि देने का अधिकार होगा।...और निर्भीकता की साक्षात मूरत बा सत्याग्रह में कूद पड़ीं, जेल भी गईं और हर कसौटी पर खरी साबित हुईं।

गाँधीवादी विचारक और चित्रकार अमृतलाल वेगड़ ने कहा था, बापू प्रेम व दया के सागर थे, लेकिन बुराई के विरुद्ध लड़ने में बड़े कठोर। जहां भी असत्य, अन्याय और उत्पीड़न देखते थे, लड़ने को तैयार हो जाते थे। पर...वे लड़ते थे सत्य और अहिंसा की ताकत पर।

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद नीति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए बापू एक नया प्रतीकात्मक शब्द चाहते थे। उसी उद्देश्य से सम्पन्न एक प्रतियोगिता के जरिए ११ सितंबर १९०६ को 'सत्याग्रह' शब्द को मान्यता प्राप्त हो गई। यह सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार के उन क़ानूनों के विरुद्ध था जिनमें हर भारतीय (बड़े व

बच्चे) नागरिक पर तीन पोंड का वार्षिक कर लगाना, भारतीय रस्मों से संपन्न शादियों को अवैध ठहराना और ऐसी कुछ और भी बातें थीं जिनकी वजह से वहाँ भारतीयों का जीवन-यापन असंभव हो सकता था। आंदोलन के साथ ही गोरी सरकार की दमनकारी कार्यवाही शुरू हो गई। सत्याग्रही पुरुषों -स्त्रियाँ से जेलें भर गईं। कुछ मौतें भी हुईं लेकिन आंदोलनकारी डिगे नहीं। अंततः सरकार ने ही हथियार डाल दिए और बापू के अहिंसक अभियान की जबरदस्त जीत का डंका बज गया।

इस ऐतिहासिक लड़ाई के बाद १९१५ में बापू भारत लौटे। यहाँ उन्होंने देश के दूर-दराज के क्षेत्रों का भ्रमण किया और १९१७ में बिहार के चंपारण जिले में सत्याग्रह का प्रथम पौधारोपण किया। दरअसल चंपारण का कृषक वर्ग अंग्रेज़ मालिकों के लिए जमीन के एक निश्चित भाग में नील की खेती करने को बाध्य था। उसमें नुकसान ज्यादा था और बचने का कोई रास्ता नहीं। तब उन्हें बापू याद आए। राजकुमार शुक्ल नामक किसान के साथ वे चंपारण पहुंचे, प्रशासन को अपने उद्देश्य से अवगत कराया और वस्तुस्थिति की जांच में जुट गए। तभी कमिश्नर ने उन्हें चंपारण छोड़ने का आदेश दिया, पर बापू कब मानने वाले थे। बोले, पीड़ितों की मदद करना मेरा धर्म है। मैं चंपारण नहीं छोड़ूंगा। कानून तोड़ा है तो मैं सजा भुगतने को तैयार हूँ। किंतु निजी स्तर पर सारी तैयारी कर लेने के बाद सजा सुनने के लिए कोर्ट जाने का समय हुआ, उससे पहले ही मजिस्ट्रेट का आदेश मिला कि गवर्नर साहब की आज्ञा से मुकदमा वापस ले लिया गया है और बाद में कलेक्टर का पत्र भी प्राप्त हो गया जिसमें आवश्यक मदद का आश्वासन भी दिया गया था। यह चंपारण के किसानों और बुद्धिजीवियों का चमत्कार ही था कि बापू ने 'आत्मकथा' में लिखा, ...सारे हिंदुस्तान को सत्याग्रह का अथवा कानून के सविनय भंग का पहला पदार्थ पाठ मिला। अखबारों में इसकी खूब चर्चा हुई और चंपारण को तथा मेरी जांच को अनपेक्षित रीति से प्रसिद्धि मिल गई। यह भी कि इसी सत्याग्रह ने एहसास कराया कि चंपारण और बिहार के बहाने देश को शिक्षा, स्वच्छता, स्वास्थ्य, भाषा, रोजगार, सौहार्द, जैसी चुनौतियों से भी सभी को एक साथ मिलकर जूझना होगा।

उल्लेखनीय है कि **असहयोग आंदोलन (१९२१-२२), बारडोली सत्याग्रह (१९२८), नमक सत्याग्रह (१९३०) और अगस्त क्रान्ति (१९४२) जैसे आंदोलनों ने ऐसा माहोल बनाया, विरोध एवं विजय की ऐसी परंपरा कायम की कि अंग्रेजों को १५ अगस्त १९४७ को भारत छोड़ना पड़ा।** ...और विशेषता यह कि बापू की हर रीति-नीति में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में बा पूरी निष्ठा से उनके साथ तत्पर खड़ी नजर आईं।

हाँ, पारिवारिक जीवन में कई बार ऐसे भी मौके आए जब बा-बापू के बीच तनाव की स्थिति बनी। एक बार डरबन (दक्षिण अफ्रीका) में आपसी तकरार के चलते बापू ने बा को पकड़कर घर से बाहर कर दिया। वे भी क्रोध में बोलीं, आपको तो शर्म नहीं है, मुझे है। मैं बाहर निकलकर कहाँ जा सकती हूं, इधर मेरे माता-पिता हैं क्या? ऐसे में बापू की स्वीकारोक्ति खासतौर पर दृष्टव्य है। वे लिखते हैं, यदि पत्नी मुझे नहीं छोड़ सकती थी तो मैं भी उसे छोडकर कहाँ जा सकता था। हमारे बीच झगड़े बहुत हुए पर परिणाम सदा शुभ ही रहा। पत्नी ने सदा अपनी अद्भुत सहनशक्ति द्वारा विजय प्राप्त की।

इसी प्रकार अस्वस्थ होने पर चिकित्सक के बार-बार कहने पर भी कस्तूरबा ने मदिरा व मांस का सेवन नहीं किया सो नहीं ही किया और बापू ने भी सबकुछ उन्हीं की इच्छा और आस्था पर छोड़ दिया। सच तो यही है कि उनकी दृष्टि में बा की मान्यता ही सर्वोपरि रही।

एक साक्षात्कार में अपने प्रिय दादा-दादी को याद करते हुए तारा गाँधी भट्टाचार्य ने कहा था, लंबी बीमारी के बाद जब बा की मृत्यु हो गई तो बापू को हमने पहली बार मुस्कानविहीन देखा। ...वह साधारण पत्नी नहीं थीं। बापू की आजादी की लड़ाई में बा भी बराबर की हिस्सेदार थीं। ❑

१-त-८ अंजलि, दादाबाड़ी,
कोटा (राज)- ३२४००९/
मो: ९४६११८२५७१

हमारा एक सपना :
मिशन ताना–बाना का शुभारंभ

बापू के जन्म दिन का महीना है। हम बापू के जीवन और दर्शन में अवगाहन कर रह हैं। जितना उधर देखते हैं उतना इधर भी देखते हैं। जितना तब हमारे सामने था उतना अब भी हमारे सामने है। कल और आज के इस दर्शन के बीच खड़े हम न केवल विस्मित हैं, बल्कि हताहत हैं। ठिठके खड़े हैं कि यह क्या हुआ? वही चिर-परिचित विलाप याद आता है कि **हम कौन थे? क्या हो गये? हम और क्या होंगे अभी?**

बापू आज भी हमारे साथ हैं। सहारा देने को । दिलासा देने को। **मगर लग रहा है कि वर्तमान हमें बिना अपने साथ लिये हमारे हाथ से निकल गया है।** एक बलात्कार, दूसरा बलात्कार, तीसरा बलात्कार। कहीं कोई किसी का घर उजाड़ रहा है और कहीं कोई किसी की बेटी की लाश को परिजनों को सौंपे बिना आधी रात को पुलिस के पहरे में भस्मीभूत कर रहा है। **ऐसे अंतिम संस्कार का वर्णन समूचे भारतीय वाङ्मय में कहीं किसी पन्ने पर नहीं मिलेगा। यह हमारा वर्तमान है जो हमें धोखा देकर हमारे सामने खड़ा है।** इसे हम अपना समय नहीं कह सकते । न हम यह स्वीकार कर सकते कि यह उस देश का सच है जिसे गौतम गांधी का देश कहा जाता है। और भी न जाने कितने अत्याचार, कितने कुकर्म, कितने कदाचार, कितनी धोखाधड़ी, कितनी असंवेदनशीलता, मनुष्य मात्र की कितने उपेक्षा!!!!!!!

ऐसे समय में यह अनिवार्य हो गया है कि हम अपने समाज का ताना–बाना फिर से संवारने में अपनी सारी शक्ति लगा दें। जिस झीनी–झीनी चदरिया का उल्लेख कबीर करते करते चले गये उसी चदरिया का ताना–बाना आज तेरी–मेरी छीना–झपटी में तार–तार हो गया है। हमारा सिर शर्म से झुका जा रहा है।

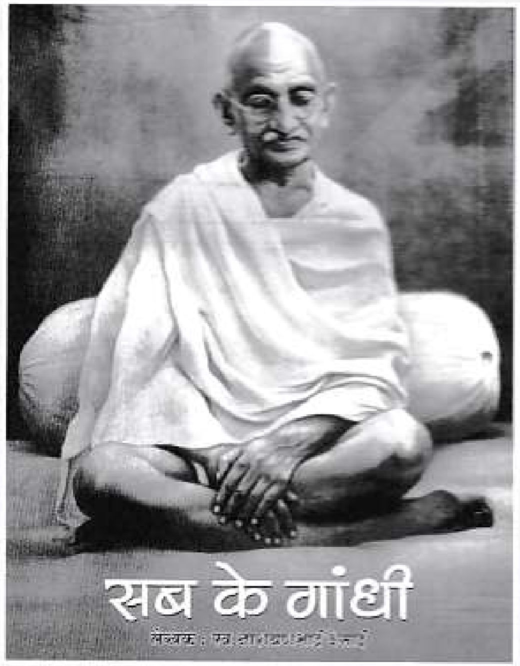
भाईचारे के हजारों उदाहरण हमारे देश में हमें हर तरफ दीख जायेंगे, मगर हमारा बर्ताव, हमारा आचार–विचार सब बिगड़ रहा है। **यही कारण है कि हम सामाजिक सद्‌भाव की दिशा में पुनर्जागरण की तरह एक अभियान का शुभारंभ करना चाहते हैं। यह अभियान होगा– मिशन ताना–बाना।**

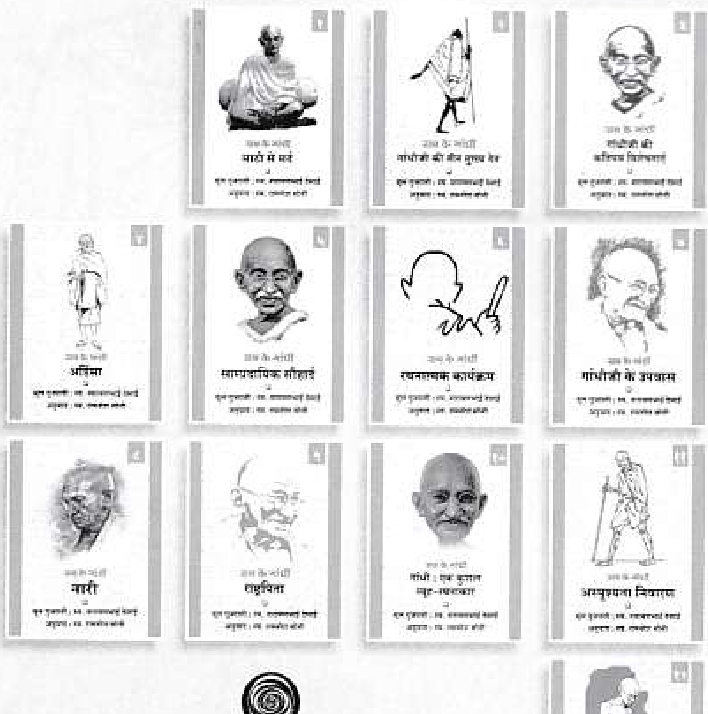
हम प्रयास यह करेंगे कि जीर्ण–शीर्ण होते हुए सामाजिक ताने–बाने को और अधिक बिखरने से बचा लें। हमारी आस्था केवल शिक्षा पर है। शिक्षा ही ऐसा काम कर सकती है। इकतरफा शिक्षा नहीं, बल्कि **संवाद आधारित शिक्षा।** आपसी बातचीत के सहारे संपन्न होती शिक्षा। खेत–खलिहानों में घटित होती शिक्षा अर्थात सार्वजनीन सतत शिक्षा ही यह चमत्कार कर सकती है कि समाज का ताना–बाना बिखरने से बच जाये। ग्राम–सखी संवाद के दो–तीन आयोजनों ने हमारे विश्वास की पुष्टि की है कि हम ऐसा कोई सपना देख सकते हैं। यह सपना समाज के बिखरते ताने–बाने को बचा लेने का सपना है।

हमारा सपना यह है कि हम गांव–गांव में संवाद आयोजित करेंगे। वे ग्राम–सखी संवाद एवं ग्राम–सखा संवाद कहलायेंगे। ऐसे संवाद केवल १५–३५ वर्ष तक नौजवान स्त्री–पुरुषों के साथ ही आयोजित किये जायेंगे। इन संवादों के अंतर्वस्तु सामाजिक जागरण और सामाजिक सद्‌भाव की स्थापना होगी। अपने विवेक से, अपने समाज की सारी समस्याओं का हल हमारे गांव स्वयं कैसे करें ? इस सवाल से सभी ग्राम–सखाओं को जोड़ना होगा। न केवल जोड़ना होगा बल्कि उनको प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना होगा। **नया उल्लास, नयी उमंग और नयी ऊर्जा से उन्हें जोड़ना होगा।**

ग्राम–सखा संवादों के आयोजनों से पहले ग्राम–सखा एवं ग्राम–सखियों के प्रशिक्षण भी आयोजित करने होंगे। जिसकी शुरुआत हम कर चुके हैं। **हर घर में पोथी–घर**–एक कार्यक्रम होगा। **हर–घर को स्वावलंबन**–दूसरा कार्यक्रम होगा। **गांव–गांव में लोक–जागरण**–तीसरा कार्यक्रम होगा। **हर बच्चे की वत्सल परवरिश** – चौथा कार्यक्रम होगा। ऐसे कई कार्यक्रम जुड़ते जायेंगे और **मिशन ताना–बाना** आगे बढ़ता जायेगा। ❑

–रमेश थानवी







सब के गांधी

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र   डाक खर्च अलग से देय होगा।

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा



जिस से न बोले हो
उस से बोलो,
जिस से न मिले हो
उस से मिलो,
जिस के घर न गये हो
उस के घर जाओ,
और यह सब इसलिए,
करो कि,
यह दुनिया लेनदार है
और हम देनदार है। ❑

– गांधीजी, १९३२